॥ वीरनारी ॥

ऐतिहासिकनाटक

जिसे

रामकृष्णवर्म्मा

सम्पादक भारतजीवन बनारस

ने

हिन्दीरसिकों की शिक्षा और राजभक्तों के
चित्त विनोदार्थ बङ्गभाषा से शुद्ध आर्य्य-
भाषा में अनुवाद किया



॥ काशी ॥

भारतजीवन यन्त्रालय में मुद्रित।

सन् १८८९ ई०।

॥ वीरनारी ॥

ऐतिहासिकनाटक

जिसे

रामकृष्णवर्म्मा

सम्पादक भारतजीवन बनारस

ने

हिन्दी रसिकों की शिक्षा और राजभक्तों के चित-
विनोदार्थ बंगभाषा से शुद्ध आर्य्यभाषा में
अनुवाद किया।

॥ काशी ॥

भारतजीवन प्रेस में मुद्रित हुई।

सन् १८८९ ई०।

प्रथम बार १०००] [मूल्य ।/)

धन्यवाद।

हम अत्यन्त कृतज्ञता पूर्वक प्रकाश करते हैं कि श्रीयुत बाबू द्वारिकानाथ गांगूली महाशय ने हमारी प्रार्थनानुसार इस ग्रंथ के अनुवाद और प्रकाश करने की आज्ञा हमे देकर अनुगृहीत किया जिस्से हिन्दी के जानने वालों को भी इसका हाल विदित होगा और वे देखेंगे कि प्राचीन क्षत्रीनारियों ने भी किस प्रकार प्राण समर्पण कर धर्म्म तथा देश की रक्षा की है। हम अपने परम मित्र कलकत्ता निवासी बाबू ब्रजनाथ पण्डित को भी विपुल धन्यवाद देते हैं कि उन्हों ने इस कार्य्य में हमारी विशेष सहायता की है। हम आशा करते हैं कि उक्त सत्वाधिकारी की आज्ञानुसार हम और भी अनेक ग्रन्थ हिन्दी भाषा में समयानुसार प्रकाश करते जांयगे।

रामकृष्ण वर्म्मा
सम्पादक भारतजीवन
बनारस।

आलोर राज्य का संक्षिप्त वृत्तान्त।

पाठकों के विशेष जानने के लिये हम यहां आलोर स्थान और उस्के राज्य का संक्षेप वर्णन प्रकाश करते हैं। यह आलोर अथवा आरोर नामक पुरी ऊपरी सिंध की प्राचीन राजधानी थी। यह स्थान ज़िला शिकारपुर में रोहरी नामक स्थान से ५ मील पूर्व है। सिंध के हिन्दू राजाओं का मुख्य स्थान था इस की बस्ती सिंध नदी के पुराने मार्ग के किनारे थी परन्तु सन् ८६२ ई० में भूकम्प होने और सिंध नदी के मार्ग बदलने से बहुत कुछ नाश हो; गया आलमगीर की एक मसजिद अब लों वहां बनी है। एक कंदरा के पास कालिका देवी का स्थान बना है जहां अबलों हर साल मेला होता है।

अबुलफ़ज़ल नामक प्रसिद्ध इतिहासलेखक लिखता है कि यह आलोर नगर मुलतान से भी कुछ चढ़ा बढ़ा था, यहां प्रमरवंश का साहिर नामक राजा हुआ जिस की राजधानी आलोरपुरी थी। इस का राज्य उत्तर में काश्मीर पश्चिम में मेहरान अर्थात् सिंध नदी और दक्षिण में समुद्र पर्य्यन्त फैला था। फारस के मुल्क से सेना चढ़

आई, राजा युद्ध में मारा गया और फारसके लोग सब कुछ लूट मार कर घर लौट गये। राजा का पुत्र रायशा गद्दी पर बैठा। इस वंश का राज्य खलीफा वलीद के समय तक था जब ईराक के हाकिम हिजाज ने सन् ७१७ ई० में महम्मद क़ासिम को सेना लेकर भेजा और उसने युद्ध में वहां के राजा दाहिर को मारा। उनके मृत्यु के उपरांत उनकी रानी और बधू ने जिस प्रकार देश तथा मान की रक्षा की है उसी के उपलक्ष में यह नाटक रचा गया है फिरिश्ता नामक दूसरा इतिहास लेखक और कर्नैल ब्रिग्ज़ साहब भी इसी प्रकार का वृत्तान्त देते हैं जिस का सारांश हम ऊपर प्रकाश कर चुके हैं।

रामकृष्ण वर्म्मा
सम्पादक भारतजीवन
बनारस।

नाटकस्थ पात्रों के नाम ।

स्त्रीगण ।

रानी ... ... दाहिरराज की स्त्री ।

बधू ... ... रानी की पतोह (जयसिंह की स्त्री)

देवकी ... ... रानी की सखी ।

सुरङ्गिनी .. .. बधू की सखी ।

सुनीति ... ... मंत्री की कन्या ।

सरमा ... ... सुनीति की सखी ।

कुन्दलता और बिरजा .. .. क्षत्रियकन्या ।

देवला ... ... ब्राह्मण की स्त्री ।

पुरुषगण ।

गङ्गादीनसिंह, भीमसिंह, धीरसिंह, रणवीरसिंह ... ... सैन्यनायक ।

महम्मद कासिम ... ... यवनसेनापति ।

जैनखां और युसफखां ... ... सैनिक कर्म्मचारी ।

द्वारपाल, मंत्री, दूत, अस्त्रवैद्य, सेनापति, ब्राह्मण, सन्यासी, और दासी इत्यादि ।

श्री:

स्थान रङ्गभूमि।

रङ्गशाला में नान्दी मंगलपाठ करता है।

दोहा।

मेघबरन तन रतनगन चन्द्रभाल भुज चार।
प्रणपाली शाली सदा श्रीकाली रिझवार ॥

सूत्रधार का प्रवेश।

सूत्रधार—आहा! आज के सभा की तो कुछ विलक्षणही शोभा देख पड़ती है, देखो कैसे २ वीरपुरुष इस ओर अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित और सामरिक वेश से सभा में विराजमान हैं, इधर देखो क्षत्रियों के बालक भी यद्यपि वयस के छोटे हैं तथापि वीरता में किसी प्रकार कम नहीं है। इस ओर देखो क्षत्रीस्त्रीगण भी आज की नाट्यलीला देखने आई हैं, क्यों न हो ये लोग वीरकन्या, वीरनारी और वीरमाता हैं जैसी इनकी धीरता वैसी ही इनकी वीरता भी है सत्य है धीरस्यापि शिरश्छेदे वीरत्वं नैव मुञ्चति" फिर यह तो क्षत्रियों का परम धर्मही है कि स्वामी और देश के लिये सदा प्राण को हाथ पर लिये रहना, जैसी राजभक्ति और राज्यप्रीति इस क्षत्रीजाति में है वैसी कदापि अन्यजाति में नहीं पाई जाती। इसी कारण हमारी

परम न्यायवती सरकार इन्हीं को सेना में रख कर इन पर अधिक विश्वास रखती है और ये भी उसी प्रकार धर्म्मपूर्वक स्वामी की भक्ति दिखलाते हैं— ठहरो मैं अपनी प्रिया को बुलाकर पूछूं तो कि, इन वीरपुरुषों को क्योंकर प्रसन्न करना उचित है (नेपथ्य की ओर देख कर) अरी प्रिये! जरा इधर तो आ!

(नटी का प्रवेश)

नटी—प्राणनाथ! वीरपुरुष, कहिये क्या आज्ञा है? मुझे क्यों स्मरण किया है?

सूत्र०—प्रिये! देखती हो इस भारत भूमि की क्या दशा है जहां भीम, अर्जुन, द्रोण, कर्ण इत्यादि सरीखे वीर हो गये हैं, वही भूमि आज यवनों से पददलित हो रही है, इन वीरपुरुषों को कोई ऐसा नाटक दिखलाओ कि इन्हें अपना प्राचीन गौरव विस्मरण न हो।

नटी—भला नाटक दिखाने से क्या होगा? अब तो यवन इस देश में बहुत कम हैं और जो हैं भी सो क्या आपके नाटक दिखाने से भारत परित्याग कर देंगे?

सूत्र०—नहीं नहीं तुम हमारा अभिप्राय नहीं समझती हो—ये सच्ची वीरपुरुष न्यायवती सरकार की प्रजा हैं और ये बिना वेतन के केवल राज्यभक्ति से सरकार की सेवा में सदा उपस्थित रहते हैं। जो ब्रिटिश गव-

मेंगट का शत्रु है वह इनका शत्रु है जो सरकार का मित्र है वह इनका मित्र है अतएव कदाचित् (दैव ऐसा न करे) कोई शत्रु दुर्भाग्य का मारा इधर पैर उठावे तो ये उसी प्राचीन बीरता के साथ उसे दण्ड दें, अतएव इन्हें किसी ऐसे नाटक का दिखाना आवश्यक है जिस में स्त्री पुरुष और बालक सभी की बीरता प्रगट हो।

नटी—ठीक है तो वही वीरनारीनाटक क्यों न खेला जाय जो सम्पादक भारतजीवन बाबू रामकृष्ण वर्म्मा ने अनुवाद किया है और जिसे आपने सब को अभ्यास भी कराया है।

सूत्र०—वाह! वाह! धन्य है क्यों न हो तुम वीरकन्या और वीरमाता न हो तुम्हारे बिना ऐसा कौन कहे?

नटी—नाथ! मुझे वीरकन्या और वीरमाता होने का उतना अभिमान नहीं है जैसा बीरपत्नी होने का अहङ्कार है।

सूत्र०—हां हां यह तो यथार्थ ही है, चलो अब विलम्ब मत करो, सभ्यगण उत्साह में भरे हैं—अब शीघ्रता करो।

नटी—अच्छा चलिये। [दोनों का प्रस्थान।

इति प्रस्तावना।

वीरनारी।

प्रथम अङ्क।

प्रथम गर्भाङ्क।

स्थान—जलोर नगर का राजमहल।

(रानी और देवकी बैठी हैं, परिचारिका खड़ी है।)

द्वारपाल का प्रवेश।

द्वा०—राजकुमार के निकट से दूत आया है, वह द्वार पर खड़ा हो कर अनुमति की अपेक्षा कर रहा है।

रानी—युद्धक्षेत्र से जो कोई आवे, अनुमति की अपेक्षा न करे, समय असमय का विचार भी न रक्खे, उसी समय उस को ले आना; मै सर्व्वदा उसके साथ भेंट करने को प्रस्तुत हूं। युद्धक्षेत्र में मेरा एकमात्र प्राणधन पुत्र—दुःखिनी का शेष अवलम्ब पितृहन्ता यवनों का सिर काटने के लिये गया है। माता के निकट पुत्र की कुशलवार्ता लाने में आडम्बर का कुछ प्रयोजन नहीं, राजनीति रक्षा करने की कुछ आवश्यकता नहीं। द्वारपाल! दूत को जल्दी ले आ।

[द्वारपाल का प्रस्थान।

(दूत को लेकर द्वारपाल का पुन: प्रवेश ।)

दूत—(कुछ पर्दा उठाकर) यह दास प्रणाम करता है।

रानी—तुमारा कुशल हो। युद्धक्षेत्र में मङ्गल है? राजकुमार तो कुशल से हैं न?

दू०—मै संग्रामस्थान से नहीं आता किन्तु। राजकुमार कुशल से हैं।

रा०—(कुछ उद्विग्न होकर) युद्धक्षेत्र से नहीं आते, तो राजकुमार की कुशल कैसे जाना?

दूत—उन्होंने समरक्षेत्र को परित्याग किया है।

रा०—(अधिक उद्विग्न होकर) क्यों? सैन्यसंग्रह करने के लिये?

दू०—नहीं। टिड्डिओं की नाईं यवनसेना के सामने वे कितना सैन्य संग्रह करेंगे? युद्ध में जयलाभ की कोई आशा नहीं है।

रा०—(दृढ़ और गम्भीर स्वर से) दूत, तो क्या वह कायर पुत्र युद्ध छोड़कर भाग गया? तुम क्या यही दारुण संवाद लेकर यहां आये हो? (खेदसे) हाय! उसकी मृत्यु का समाचार क्यों न ले आये?

दू०—जननी, ऐसी अमङ्गल बात न कहिये।

रा०—इस समय पुत्र की मृत्यु मेरे पक्ष में मंगलवार्त्ता है, कुछ अमङ्गल नहीं।

दू०—राजकुमार उत्तर की ओर गये हैं।—

रा॰—क्यों ? क्षत्रिय का पथ क्या कण्टक से घिरा है ? हा कापुरुष ! क्षत्रियसंतान को मृत्यु का भय ?

दू॰—राजकुमार ने मुझ को श्रीचरण में यही निवेदन करने की अनुमति दी है कि,—यवन सेना के हस्त से निस्तार नहीं है; जितना शीघ्र हो सके आप लोग सब एकत्रित हो कर मानरक्षा के लिये किसी एकान्त स्थान में आश्रय ग्रहण करें। वे निरापदस्थान ढूढ़ने के लिये आगे गये हैं।

रा॰—अच्छी बात है वह उसी चिर निरापद स्थान का आश्रय करे। हम लोग उस यवन सेनापति (अन्याय युद्ध करनेवाला सेनापति नाम लेने के योग्य नहीं है) उस घोर और नरघातक को समुचित दण्ड देकर शीघ्रही उसका अनुगमन करेंगी।

दू॰—यह क्या ! जिस यवन सेनापति के हस्त से वीर-केशरी दाहिरराज मारे गये, जिसके भय से आप के वीरव्रताचारी पुत्र ने पलायन किया, तो क्या आप स्त्री हो कर—

रा॰—क्षत्रिय दूत के मुख से ऐसी अमर्य्यादा की बातें ? यह क्या क्षत्रियोचित वाक्य है ? भारतनारी क्षत्रीय-कन्या क्या युद्ध में असमर्थ है ? सिंहनी शृगाल के भय से पलायन करेगी ? देखती हूं, कि यवनों के

अपवित्र निश्वास ने अभी से तेरा क्षत्रधर्म्म विलुप्त कर दिया है । हा भारतभूमि ! तू भी यवनों का पादाघात सहने लगी ! तेरे सन्तानगणों की कैसी दुर्गति होगी, और वे कैसे नीच और अपदार्थ हो जांयगे, अभी से उसका पूर्व लक्षण दीख पड़ता है नहीं तो किस क्षत्रियसंतान के मुख से स्त्रीजाति के प्रति ऐसी अमर्य्याद की बात बाहर होती ? कौन क्षत्रिय स्वदेश के घोर उपद्रवकारी विधर्मी यवनों के विरुद्ध अस्त्र धारण करने में विमुख होकर भय से पलायन करता ? यवनों के पदस्पर्श से आज जो भारत की यह हीन दशा हो गई, भविष्य की गणना करने से हृदय कम्पित होता है ।

दू॰—आप यवनसैन्य की संख्या, उन लोगों का उत्साह और साहस एवं यवन सेनापति का पराक्रम और युद्धकौशल देख पातीं तो मुझ को ऐसा अन्याय तिरस्कार कदापि न करतीं । मैं स्वदेश अनुराग के अनुरोध से सत्यका अगौरव नहीं कर सकता ।

रा॰—भीरुओं के निकट जो सत्य है, वीरोंके निकट वह मिथ्या है, मूर्ख जिसको सत्य जानता है, ज्ञानी उसको अलीक बात कह कर उपहास करते हैं । तुम यवनसैन्य का आडम्बर देख कर भयभीत हुये हो, परन्तु

स्वाभाविक वीरपुरुष—साधु क्षत्रियसन्तान उस को तृणवत् तुच्छ समझते हैं। शत्रुओं के लाखों सैन्य में वह अकेले अचल रहते हैं, कापुरुषों की नाईं मृत्यु का भय कदापि नहीं करते।

दू०—आप राजमहिषी हैं, मै भृत्यहूं, आपके वाक्य का प्रतिवाद करना मुझको उचित नहीं है।

रा०—दूत, मै अन्याय अधिकार ग्रहण करना नहीं चाहती, तुम को जो कहना हो कहो; सत्य कहने में व्यक्तिविचार की आवश्यकता क्या है?

दू०—नहीं, मुझको और कुछ कहना नहीं है, समयही मेरे वाक्यकी सत्यता प्रमाणित करैगा।

रा०—मै भी व्यग्र हृदय से समय की ही अपेक्षा कर रही हूं। दैव के अनुग्रह बिना यवन सेना कदापि जय लाभ में समर्थ न होगी। रणविमुख का सहचर क्या निज वाक्य की सत्यता प्रमाणित करने की अपेक्षा करेगा?

दू०—मेरेविलम्ब करने से राजकुमार उद्विग्न होंगे,उनका आदेश लेकर मैं यहा आया हूं; उनका जो निवेदन था, इस दास के कहने में शेष न रहा, इस समय केवल अनुमति ही के लिये खड़ा हूं।

रा०—दूत, तुम उस क्षत्रियाधम से कहना कि—दाक्षिर

राज का पुत्र ऐसा कापुरुष, लोग इस बातपर वि-श्वास न करेंगी—वे मेरेही चरित्र पर सन्देह करेंगे मैं अब ऐसे नराधम पुत्र का मुख देखना नहीं चाहती। यवनों के निश्वास स्पर्श से उसका तेज यदि सम्पूर्ण विलुप्त न होगया हो, तो वह अपने रक्त से इस महापाप का प्रायश्चित करे। मै स्वामीहन्ता को उचित शिक्षा देकर क्षत्रियकुल का यह महाकलङ्क धोऊँगी; फिर महापुरुष की अनुगामिनी होऊँगी।

[निस्तब्ध।

दू॰—यदि आप का यही दृढ़संकल्प हो तो मैं राजकुमार से जाकर कहूं कि वे शीघ्र फिर आवें।

रा॰—इस राज्य में भीरुओं के लिये स्थान नहीं है। पुत्र के लिये भी क्षत्रियकन्या इस नियम को भङ्ग न करेगी; राजनियम सब को सामान रूप से आश्रय करता है।

दू॰—तो वधू माता भी नही जांयगी?

रा॰—यह बात उससे पूछो?

दू॰—वे कहां हैं?

रा॰—उसको यहीं बुलाती हूं (दासी के प्रति) दासी बहू को शीघ्र बुला ला।

दासी—जो आज्ञा जाती हूं। [दासी का प्रस्थान।

(वधू को लेकर दासी का प्रवेश।)

वधू—(प्रणाम करके) यह दासी उपस्थित है।

रा०—(हाथ से आशिष ज्ञापन कर) यह दूत तुमको लेजाने के लिये आया है। इच्छा हो तो जाने का उद्योग करो।

व०—कहां जाना होगा?—युद्धक्षेत्र में? आहत और पीड़ित सेना की सेवा में नियुक्त होना क्षत्रियकन्या का परम सौभाग्य है।

रा०—युद्धक्षेत्र में किसकी अनुगामिनी होवोगी? वहां तुमारा कौन है? रणविमुख का अनुसरण करो।

व०—कौन रणविमुख है? आपके पुत्र?

रा०—मेरा पुत्र तो जीवित नहीं है।

व०—(चकित हो कर) तो क्या मै विधवा हूं? वे क्या युद्ध में निहत हुये?

रा०—नहीं, तुमारा स्वामी रणविमुख है।

व०—मै रणविमुख की पत्नी हूं! आप गुरुजन होकर किस अपराध से मेरा ऐसा तिरस्कार करती हैं।

रा०—यह तिरस्कार नहीं यथार्थ बात है!

व०—यदि यह तिरस्कार नहीं है तो क्या यह भी यथार्थ है आपका पुत्र रणविमुख है; मैं आपही की पुत्रवधू हूं।

रा०—जो रणविमुख है वह मेरा पुत्र नहीं। क्षत्रियनारी रणविमुख कापुरुष को गर्भ में धारण नहीं करती।

ब॰—जो रणविमुख है वह मेरा भी पति नहीं है। क्षत्रियकन्या रणविमुख भीरु को पतिभाव से ग्रहण नहीं करती।

रा॰—तब क्या तुमने भी हमारे ही समान उस क्षत्रिय कुलाङ्गार को परित्याग किया?

ब॰—(गम्भीर स्वर से) हां। कि—या।

रा॰—धन्य तुमारी जननी! वही रत्न-गर्भा देवानुगृहीत भाग्यवती है। पुत्री, वह तुझे गर्भ में धारण करके पवित्र हुई है। ऐसे नराधम पुत्र की अपेक्षा तुमारे समान वीरकन्या लाभ करने से वंश पवित्र होता क्षत्री नाम में वह कलङ्क कभी न लगता। पुत्री, मेरे इस दारुण दुःख क्षोभ के समय यही एक मात्र प्रबोध है कि तू मेरे गृह की लक्ष्मी है। ईश्वर तुझ को दीर्घायु करे। दूत तुमारेही आदेश की अपेक्षा कर रहा है; उसे जो कहना हो कह कर विदा करो।

ब॰—(दूत की ओर मुख कर के) दूत आप यदि इस समय मेरेही बात की प्रतीक्षा कररहे हैं तो यों कहना कि—

दू॰—इस समय इस अधीन को जो आज्ञा हो वह पत्र—

ब॰—मैं अब पत्र लिखकर लेखनी को कलङ्कित न करूंगी; जिह्वा को भी अपवित्र करने की इच्छा नहीं होती किन्तु केवल गुरुजन की आज्ञा से ही कहतीहूं, आप

उस—अब आत्मीयता का वाक्य नहीं व्यवहार कर सकती—उस रणभीरु पुरुष को कहना कि मैंने जिस वंश में जन्म ग्रहण किया है यदि वह उसे स्मरण होता तो मुझ को रणविमुख की अनुगामिनी कदापि न बनाया चाहता और वे जो वीरव्रतधारी महद्वंश के संतान के नाम से परिचित हैं यह स्मरण होने पर वे भी पितृहंता यवनों को प्रतिफल बिना दिये कापुरुष की नाईं प्राणभय से पलायन न करते। स्वदेश की स्वाधीनता, पितृकुल के गौरव, पतिव्रताओं के मान से भी यदि उसका जीवन इतना मूल्यवान है तो आप उस से कहना कि वह सिंहताड़ित शृगाल की नाईं प्राण लेकर जहां इच्छा हो पलायन करे, मेरे लिए उस को सोचना न पड़ेगा, मेरा कर्तव्य क्या है वह मैं जानती हूं। क्षत्रियकन्या पलायन करके प्राण और सम्भ्रम रक्षा करना नहीं चाहती, प्राण देकर आत्म मान की रक्षा करती है। पलायन करके चिर दिन कोई मृत्यु के हस्त से रक्षा नहीं पा सका, वह क्यों कर पा सकता है? शेष कथा यह है कि मैं स्वर्गीय महात्मा दाहिरराज की पुत्रवधू हूं, रणविमुख की कोई नहीं (बाष्पावरुद्ध कण्ठ औ अश्रुपूर्णलोचन हो पीछे के द्वार की ओर हट आना।)

दू०—(रानी से) तब क्या यह दास विदा हो ?

रा०—(वाष्पावरुद्ध कण्ठ से) अच्छा ।

दू०—तो इस भृत्य का प्रणाम ग्रहण कीजिये

[प्रस्थान ।

(रानी का अचेतन हो कर भूमिपतन)

—***—

द्वितीय गर्भाङ्क ।

अन्तःपुर ।

(देवकी और परिचारिका गणों का रानी को लेकर अन्तःपुर में प्रवेश ।)

दे०—हा ! यह क्या हुआ ? दासी सब कहां गई ? यहां क्या कोई नहीं है ?

दासी—(विरक्त हो कर) अब कौन बुलाता है ? (आकर विस्मय से) हैं ! हैं ! यह क्या विपद् पर विपद् ? (देख कर) हा ! विधाता महारानी को यह क्या हुआ ? विपद् क्या अकेली ही आती है ? सच है 'समुद्र की तरङ्ग की नांई एक के उपरान्त एक उपस्थित होती है । अब निस्तार नहीं है ।

दे०—(चकित हो कर) क्या कुछ और हुआ ?

दासी—और क्या होगा ? बाकी क्या है ?

दे०—अभागी ! कह न, जल्दी कह ।

दासी—क्या कहूं सर्व्वनाश हुआ चाहता है। दुःख से मेरी छाती फटी जाती है। महाराज स्वर्ग पधारे—राजपुत्र ने रण परित्याग किया—

दे०—अभागी ! यह सब तो मैं जानती हूं, नयी बात क्या है ?

दासी—बधू का मस्तक फट गया है रक्त की धार निरन्तर बह रही है।

दे०—हैं ! यह—कैसे हुआ ?

दासी—बधू जब रानी के निकट से आई, आतेही अचेत होकर सीढ़ी पर गीर पड़ीं, माथा फट कर रक्त बहने लगा, देखते २ स्वेत पत्थर की सीढ़ी रक्त से लाल हो गई।

दे०—(व्यस्त होकर) इस समय कैसी हैं ?

दासी—अबलों तीर की नाईं रक्त बह रहा है—ज्ञान नहीं है—अत्यन्तही अचेत हो गई हैं।

दे०—अच्छा तू महारानी को सम्हाल!—घर ले जा। मैं बहू को देखने जाती हूं।

[प्रस्थान ।

—❊❊❊—

(रानी को ले कर परिचारिका और दासी गणों का गृह में प्रवेश और देवकी का वधू के गृह गमन ।)

दे०—(आतङ्कित हो कर) हे माता यह क्या सर्वनाश होगा। बहू तो चली गई। बिछौने पर यह रक्त की नदी। (दासियों से) तुम लोग हटजाओ वायु लगने दो शीघ्र जल ला कर मस्तक पर दो।

[मस्तक पर जलधार गिराना।

सुरङ्गिणी—(दासी के प्रति) अरी दासी। मंत्री महाशय को बुला ला। शीघ्र अस्त्रवेद्य को बुलाने कह दे। ओः नाड़ी अब नहीं मिलती; हाय बड़ी धीमी हो गई है !

दासी—मंत्री महाशय को इस समय कहां पाऊंगी। वे तो गृह—

सुर०—अरी अभागी ! उनके घरपर दौड़ी जा न, जल्दी दौड़ जा। [दासी का प्रस्थान।

दे०—अब कोलाहल मत करो, मुख पर जल की छींटा दो—हो जल्दी दो।

सु०—रक्त न थमने पर जल की छींटा देने से क्या होगा ? ऐसा करने से कब तक बचेगी ?

देव०- तू टे न, इससे तुझे क्या काम है।

सुर०—(मुंह चिढ़ा कर) इससे मुझे क्या काम है? ये तो मानो धनन्तर हैं?

देव०—मर! इस समय भी हँसी। मैं धन्वन्तरि कैसे होऊंगी।

सुर०—क्यों? चिकित्साशास्त्र पढ़ के।

देव०—(दीर्घनिश्वास ले कर) अरी पगली, स्त्रीजाति को पढ़ावेगा कौन?

सुर०—क्यों? तूने क्या कभी पढ़ना चाहा था जो तुझे किसी ने पढ़ाया नहीं? लोक में कहने और इच्छा करने ही से मार्ग मिल जाता है।

देव०—किन्तु स्त्रीजाति को उस मार्ग में कण्टक है।

(मंत्री और अस्त्रवैद्य के सहित दासी का प्रवेश)

मंत्री०—हा! क्या विपत् है यह रक्त की नदी। (अस्त्र-वैद्य से) महाशय, जैसे हो शीघ्र कोई उपाय कीजिये।

अ०वै०—कोई भय की बात नहीं, अभी रक्त बन्द हो जाता है साधारण सी चोट लग कर नस कट गई है और कुछ नहीं।

देव० (सविस्मय) यह क्या साधारण चोट है? उस पर इतना रक्त?

अ०वै०—जी हां। अकस्मात चोट लगने से अधिक रक्त

जाता है, अबकों मस्तिष्क हिल रहा है इसी कारण इतना रक्त जाता है (बात करते २ नस का बांधना और क्षत स्थान पर लेप लगाना) और कुछ करना न होगा भीड़ हटा दो, यहां इतने लोगों का कुछ काम नहीं है दो तीन जन बहुत हैं। देखो धीरे २ बातें करना, चैतन्य होने पर कोई ऐसी बात न कहना जिसमें मन का उद्वेग हो, अच्छी २ बातें करके दुश्चिन्ता को दूर करने की चेष्टा करना (दासी से) थोड़ा जल तो दे, हाथ धो डालूं (दासी का जल देना और अस्त्रवैद्य का हाथ धोना)—(मंत्री से) मंत्री महाशय चलिये अब महारानी को देखें।

मंत्री—चलिये। [दोनों जाते हैं।

देव॰—क्या आश्चर्य है। हम लोग इतनी जनी कुछ भी न कर सकीं और इसने आते ही देखते देखते रक्त बन्द कर दिया।

सुर॰—यही तो कहते हैं "कि जाको काम वाही को साजै, और करै तो लाठी बाजै"।

देव॰—भला यह काम हमें क्यों न सजेगा! क्या सीखने से हम चिकित्सा न कर सकेंगी वरन पुरुषों से अच्छा कर सकेंगी। भला कहो तो क्या कोई पुरुष स्त्रियों की नाईं रोगी की सेवा सुश्रूषा कर सकता है?

सुर॰—अच्छा आप सीखें, आप को मैं हारकविराज नियत करूंगी।

देव॰—देखना, तुम अब ठट्ठा न कर सकोगी, सीखने का हार मिलने से मैं दिखलाऊंगी कि मैं सीख सकती हूं वा नहीं। प्रथम तो नारीजन्मही वृथा है। फिर पराधीन हृदय की जो इच्छा है वह पूर्ण नहीं होने पाती (दीर्घनिश्वास परित्याग कर) तुम लोग यहीं ठहरो मैं रानी को देख कर अभी आती हूं।

[जाती है।

—***—

तृतीय गर्भाङ्क।

स्थान—मंत्री का गृह।

(सुनीति और सरमा बैठी हैं। एक दासी पत्र ले कर आती है।)

दासी॰—देवि, एक मनुष्य यह पत्र ले कर आया है।

(पत्र देती है)

सुनीति—देखूं, क्या मेरे ही नाम का है? (खोलने को उद्यत होती है)

सरमा—सखि, किसका पत्र है?

सुनीति—(कुछ मुस्कुरा कर) किसका पत्र?—खोलने से आपही विदित हो जायगा।

सरमा—(कुछ मुस्कुरा कर) क्यों ? क्या बिना खोले नहीं कह सकतीं? यह क्या किसी अपरिचित का पत्र है?

सुनीति—हां अपरिचित हो कहो न !

सर०—(कुछ जैसे तिरस्कार छल से) सखि, यह बड़ा अन्याय है ! तुम सहसा ऐसे कुमारीनिन्दित कार्य्य में प्रवृत्त हुईं ?।

सुनी०—क्यों ?

सर०—क्यों क्या? क्या कोई कुमारी गुरुजन के अनुमति बिना अपरिचित पुरुष का पत्र ग्रहण करती है ?

सुनी०—तो जैसे मैंने ग्रहण किया इसमें अपराध क्या है?

सर०—अपराध ? बड़ा अपराध है ! सामाजिक नियमोल्लङ्घन से बढ़ कर अपराध क्या होगा ?

सुनी०—सखि, सुनीति कभी किसी अन्याय आचरण के आधीन न हुई और न होगी।

सर०—तो मैं सेनापति को कहला भेजती हूं कि इस राज्य में एक विद्रोही बास करता है, यदि वे मङ्गल चाहें तो आकर उसे बन्दी करें !

सुनी०—देखा जायगा कि तेरे सेनापति की कितनी क्षमता है, सुनीति स्वयं बन्दी न हो तो उसे कौन बन्दी कर सकता है ? (पत्र खोल कर पढ़ती है।

क्या मेरा पत्र ? - मेरा मन नहीं पाया ?

सर०—क्यों क्या हुआ ?

सुनी०—यह देख, तेरे सेनापति लिखते हैं कि बहुत दिनों से उन्होंने मेरा पत्र नहीं पाया।

सर०—तो क्या तुमने पत्र लिखा ही नहीं ?

सुनी०—लिखा नहीं ? कैसे अन्याय की बात है ! यह पिता जी की चतुराई है किन्तु मैंने देवधर्म्म की साची दे कर कहा है कि किसी प्रकार मेरा यह प्रणय न रुक सकेगा, पिता का समस्त कौशल—समस्त विचार—व्यर्थ होगा। मैं सेनापति के गुण की पचपाती हूं, उनका कुल न देखूंगी।

सर०—यदि पिता प्रतिकूल होंगे तो क्या करोगी ?

सुनी०—तो इस अभागिनी का जो कुछ है—देह, मन, हृदय सब बेच कर भिखारिनी हो जाऊंगी।

सर०—विक्रय करोगी ?—खरीदेगा कौन ?

सुनी०—जान पड़ता है कि तुम्हारे सेनापति—

सर०—तो क्या पितृविरोधी का आश्रय लेकर पिता को छोड़ दोगी ?

सुनी०—नहीं, उन्हें समझा कर कहूंगी कि जिसमें वे स्नेह के कारण कन्या पर अन्याय अधिकार ग्रहण न करें।

सर०—यदि न मानेंगे तो ?

सुनी०—(कातर स्वर से) मुझे भी असुखी करेंगे और आप भी असुखी होंगे।

(नेत्र में जल भर जाता है)

सर०—सखि, मैं तुमारा कातर स्वर नहीं सुन सकती। मैंने तुमारा अपराध किया है और अनजाने तुमारे हृदय में अघात पहुंचाया है। ईश्वर अमङ्गल को दूर तुम से रक्खे ।

सुनी०—सखि सरमा, तूने मेरा कोई अपराध नहीं किया, मेरे मनमें सदा जो भावना बनी रहती है, वही न तूने कहा? कुछ और तो नहीं?

सर०—सखि, अमङ्गल मत सोचो, बिधाता तुम्हारा मङ्गल करेंगे।

सुनी०—सखि, मङ्गलामङ्गल कैसा होता है मैं नहीं जानती, विधाता की जो इच्छा है सोई होगी किन्तु सखि जब सिंधु उथलता है तो क्या उसे कोई बालू के बांध से रोक सकता है? मैं अब मन का वेग नहीं रोक सकती, मेरा हृदय फटा जाता है! (रोती है)

सर०—(सजलनयन) निठुर मंत्रिवर इस कोमलहृदया कन्या की व्यथा—

सुनी०—(रोते २) सखि, पिता जी को निठुर मत कहो,

उनका हृदय स्वभावतः निठुर नहीं है, वे कुलगौरव में अंध हो गये हैं, वे कृपा के पात्र हैं तिरस्कार योग्य नहीं।

सर॰—धिक् ऐसे कुलगौरव को! कोई सहृदय पुरुष कन्या को इतनी यातना—

सुनी॰—यदि वे मेरी यह गुप्तयातना देख पावें तो अवश्य मेरी सहायता करें।

सर॰—बिन देखे क्या नहीं समझ सकते?

सुनी॰—क्योंकर समझ सकेंगे? उस बीरपुरुष के प्रति जो मेरा जितना अनुराग है जिस प्रकार मेरे प्रणय के मूल अङ्कुर ने इसगंभीर मृत्तिका को भेद कर डाला है इसे तो वे जानते नहीं, हा। चाहे शरीर से जीवन निःशेष हो जाय, हृदय छिन्न भिन्न हो जाय तथापि मेरा यह प्रणयरूपी तरु कोई भी निर्मूल न कर सकेगा।

सर॰—सखि, जो इतने बड़े राज्य के मंत्री हैं, समस्त प्रजा के सुख दुख का वृत्तान्त जाननाही जिन का कार्य्य है, सो अपने गृह को नहीं जानते यही आश्चर्य्य है! कौन नहीं जानता कि जलप्रवाह की नाईं, स्नेह, प्रणय वा प्रेम के प्रवाह को रोकनाही बिपत् का मूल है—एक मुख बन्द करने से वह सतसहस्र मुख से

बाहर होजाता है उस समय सहस्रों मंत्री की बुद्धि भी उसे नहीं रोक सकती।

सुनी०—सखि सरमा, तू जो कहती है ठीक है। इसमें जितनी बाधा होती है उतना ही हृदय का उद्वेग बढ़ता है, किन्तु पिता जी सर्वदा राज्यकार्य्य में लगे रहते हैं, वे इस अभागिनी को भूल गये हैं। इस कारण उनकी ऐसी निन्दा नहीं हो सकती।

सर०—सखि, कौन ऐसा अज्ञ है जो अर्थ के लिये अपना कर्तव्य भूल जाय? सच है सिंधु देश के मंत्री के अतिरिक्त और कौन पुरुष ऐसा है जो निज परिवार के सुख दुःख पर उदासीन हो?

सुनी०—सखि, पिता जी को वृथा दोष मत दो, यह मेरे भाग्य का दोष है।

[पत्र लेकर पुनः पढ़ती है।

"मैं इस युद्धक्षेत्र में असंख्य शत्रुओं के बीच रह कर भी क्षणमात्र तुम्हें नहीं भूल सकता" अब क्या सुनोगी? गंभीर प्रेम का निदर्शन इससे बढ़कर और क्या होगा? वीरपुरुष मुझ पर इतने अनुकूल हैं। "किन्तु निठुर तू क्या मुझे भूल गई?" मैं क्या इस तिरस्कार के योग्य हूं? नहीं नहीं वे हृदय से ऐसा

नहीं लिखते, तो फिर मैं भी क्या इसी प्रकार का का उत्तर उन्हें लिखूं। हाय! प्रेम का तिरस्कार भी कैसा मधुर होता है?

सर०—सच कहती हो, प्रेम का तिरस्कार यथार्थ ही मधुर होता है। बिना स्नेह के अधिकता कोई किसी का तिरस्कार नहीं करता, यह अधिक स्नेह का चिन्ह है इसी लिये इतना मधुर होता है। तो सखि, मैं इस समय जाती हूं तुम शीघ्र पत्रोत्तर लिख सेनापति के मनुष्य को देकर बिदा करो।

सुनी०—क्यों? इतनी जल्दी क्यों? अभी तो पिता जी के आने में बहुत विलम्ब है।

सर०—सखि, "शुभस्य शीघ्रं" शीघ्र बिदा करनाही अच्छा है।

सुनी०—पिता जी के बिना आये क्योंकर बिदा करूं?

सर०—क्यों? वे आने पर क्या तुम्हें पत्र भेजने देंगे?

सुनी०—न देंगे तो कोई हानि नहीं परन्तु मैं गुप्त रीति से प्रेमपत्र कदापि न भेजूंगी। सुनीति ने आज पर्य्यन्त कभी अविश्वास का काम न किया और न करेगी। पिता की बिना अनुमति उसने आज पर्य्यन्त सेनापति को कभी न पत्र लिखा और न कभी ग्रहण किया।

सर०—क्या कभी ग्रहण नहीं किया ?

सुनी०—अच्छा तू ही कह कब ग्रहण किया ?

सर० –अभी मेरे साम्हनेही।

सुनी०—इसमें पिता जी की अनुमति थी।

सर०—तो क्या केवल पत्र लेनेही की अनुमति है भेजने की नहीं ?

सुनी०—नहीं, दोनों है।

सर०—तो फिर लेने में दोष नहीं है केवल भेजनेही में दोष है ?

सुनी०—सखि सरमा, विरक्त न हो। मैंने ऊपरी भेद पाया है कि पिता जी इस प्रणय के विरोधी हैं। इतने दिन लों मैंने इसका कोई प्रमाण न पाया था। उस समय सेनापति का पत्र ग्रहण करती थी, किन्तु अब जानने पर क्योंकर पत्र भेजू ? बरञ्च मेरा हृदय मरुभूमि हो जाय तथापि मैं गुप्तप्रेम की प्रचारिणी न होऊंगी, सुनीति गुप्तप्रेम को हृदय से घृणा करती है।

सर०—तो फिर जो कर्तव्य हो करो।

(नेपथ्य में—अरी सरमा!)

ये देखो, सखी मैं जाती हूं [प्रस्थान।

सुनी०—(कुछ सोच कर) अब क्या लिखूं, यदि सेनापति यह जानेंगे कि पिता मेरे इस प्रणय से अप्रसन्न हैं तो वे अत्यन्त दुखित होंगे । अतएव पिता के प्रति उनकी अश्रद्धा वा क्रोध उत्पन्न कराना मेरा कर्तव्य नहीं है । विशेषतः यह कि युद्ध में सेनापति के दुखित और चित्त के उचाट होने से राज्य का अमङ्गल होना सम्भव है । तो क्या मैं क्षत्रियकन्या होकर राज्य का अमङ्गल कराऊंगी? (फिर सोचकर) वे प्रणय के अनुरोध से मेरा अपराध क्षमा करेंगे, तो चलूं अपनाही अपराध स्वीकार कर के लिखूं!

[जाती है ।

--✿✿✻—

चतुर्थ गर्भाङ्क ।

स्थान--राजभवन—बधू का गृह ।

(बधू निद्रा में पड़ी है, देवकी शय्या के पास बैठी है ।)

देव०—निद्रा आ गई—पद्म मुद्रित हो गया,—शरीर में रक्त का लेशमात्र भी नहीं है, मानो विषन्नता ने इस रूपराशि को एक बेरही छेक लिया । आहा! कैसी सहनशीलता, मानरक्षा का कैसा यत्न, कुलगौरव का कैसा ज्ञान, किन्तु फिर भी हृदय कैसा कोमल है!

मानो यह इस बात की उदाहरणस्वरूप है कि इसमें बीरता और कोमलता दोनों एकही स्थान में बास कर सकते हैं स्नेह और दया स्वयं मूर्तिवती है।

बधू०—हा! कायर की नाईं भाग गये?

देव० – यह कैसा स्वप्न है?

ब० – फिर भागोगे? निठुर निर्दय! फिर भागोगे?

देव० – हा! स्वप्नदेव! तुमसे क्या असाध्य है? तुम्हारी ही छलना से बाँझ पुत्रलाभ पाती है, दरिद्र राज्यमहल बनाता है, पराधीन स्वाधीन होता है, अभागिनी विरहिनी भी पति सहवाससुख से कृतार्थ होती है—

ब० – क्या लज्जित हो गये? हृदय में चोट लगी? नहीं नहीं अब कायर न कहूंगी—बीरपुरुष –

देव० – जाग्रत अवस्था में जिसके समग्र सुख की आशा समाप्त हो चुकी है यदि उसे स्वप्न में भी कुछ सुख हो तो उसे यही परम लाभ है। बधू के इस स्वप्न सुख को मैं कदापि भङ्ग न करूंगी।

ब० – बीर पुरुष – यह लो अक्षयकवच, यह लो धनुर्व्बाण यह लो खड्ग (सचकित) शत्रु – यवन – जयनिनाद शीघ्र युद्ध की तयारी करो।

देव० – हा! मायामुग्धे—!

ब० – कुछ भय नहीं प्राणेश्वर, भय क्या ? मैं तुम्हारे संग चलूंगी, देखो मैं भी तयार होती हूं मैं भी रणभूमि में चलूंगी।

देव० – हा! कुमार!—कापुरुष! तुमने जिस्से प्रतिज्ञा की थी कि "शोक में, दुःख में, विपद् में, कभी तुम्हारा परित्याग न करूंगा" आज देखो वही तुम्हारी रक्षा, तुम्हारी सहायता करती है परन्तु तुम उसे छोड़ कर भाग गये!

ब० – प्राणनाथ! लोक देखें कि आप युद्ध से भयभीत नहीं है, अस्त्र चलाने में असमर्थ नहीं हैं, आप निज नाम वा क्षत्रीनाम के अयोग्य नहीं हैं। इस अभागिनी के पति कापुरुष नहीं—

देव० – हा! यह आक्षेप! तेरा पति कापुरुष! – कौये के गले में मोतियों की माला—विषवृक्ष पर मधुरलता—

ब० – वीरपुरुष! यह क्या तुम्हारे योग्य है? फिर भागने की चेष्टा? शान्त हो, तुम्हारा पैर धरूं शान्त होओ। यदि तुम अस्त्र परित्याग करते हो तो देखो कवच मैं पहिरूं, देखो धनुर्व्वान मैं धारण करूं मैंही तुम्हारा वेष धरकर रण में प्रवेश करती हूं, परन्तु तुम्हारे पैर पड़ूं खड़े रहो, जाओ न। फिर भागे? – फिर भागे? (धरने के लिये हस्तप्रसारण, निद्राभङ्ग, किंचित निस्तब्ध, तब रोदन।)

देव०—(स्वगत) क्या कहके चित्त को प्रबोध करूं—प्रबोध के निमित्त क्या है? जिस वृक्ष की सकल शाखा वायु के आघात से छिन्न हो गई उसे पकड़ कर क्या चढ़ा जाता है?

ब०—(सरोदन) देवि, अब यह कष्ट असह्य हो गया, शीघ्र चिता लगाओ मैं अग्नि में प्रवेश कर शरीर के साथही समग्र दुःख और कष्ट को समाप्त करूंगी।

देव०—तो क्या तुम्हारी यह इच्छा है कि इस राज्य को यवन ग्रास कर जांय?

ब०—ना, कभी नहीं।

देव०—तो फिर यह अन्याय सङ्कल्प परित्याग करो। इस समय रानी को एक तुम्हारी ही अवलम्ब है यह मत भूलो। तुम्हारे अधीर होने से उनका हृदय एक बेर ही भग्न हो जायगा, फिर वे राज्यरक्षा की चेष्टा परित्याग कर देंगी। ऐसे समय में यवनसेना अग्रसर हो जायगी और सिन्धु देश उनकी आधीनता स्वीकार करेगा।

ब०—देवि, प्रथम राज्यरक्षा—शत्रु निपात, तदुपरान्त निज दुःख और यन्त्रणा की शान्ति—मैंने यह सङ्कल्प परित्याग किया।

देव०—तो शीघ्र आरोग्य लाभ का उपाय करो।

ब०—क्या उपाय करूं?

देव॰—प्रथम तो तुम इन पैरों तक लटकते हुये केशों की माया परित्याग करो।

ब॰—क्यों ?

देव॰—अस्त्रवैद्य ने योंही बतलाया है।

ब॰—यदि मेरा प्राण भी जाय तो स्वीकार है किन्तु ऐसे परमोपयोगी केश को केवल तुच्छ जीवन की आशा से परित्याग नहीं कर सकती। हां यदि ऐसा दिन हो कि देश के समस्त बीरपुरुष यवनों के विरुद्ध धनुर्व्वाण धारण करने को प्रस्तुत हों उस दिन इन केशों को काट कर उनके धनुष की प्रत्यंचा बना दूंगी। इतने दिनों से जिन की रक्षा की है उसी दिन मेरा वह परिश्रम सुफल होगा।

देव॰—धन्य है, तुम सरीखी बीरनारी के योग्य ही यह सङ्कल्प है। किन्तु—

ब॰—बस, अब किन्तु का क्या प्रयोजन है ? मैं यह सङ्कल्प कदापि न त्यागूंगी। महारानी कैसी हैं ?

देव॰—सुना है कि कुछ चैतन्य हुई हैं।

ब॰—जाओ शीघ्र देख आओ, इस समय कैसी हैं।

देव॰—जाती हूं। [प्रस्थान।

—❋❋❋—

तृतीय अंक।

प्रथम गर्भाङ्क।

स्थान—रानी का गृह।

रानी शय्या पर लेटी हैं, देवकी और मंत्री बैठे हैं।

रानी—मंत्रि, अब मुझे अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं, मैं बीते हुई बातों को बिचार कर वृथा हृदय को कातर नहीं किया चाहती। मैं इस समय पिछली बातों को भूल गई, जो उपस्थित है उसी पर मेरा ध्यान है (कुछ करवट ले कर) किन्तु हृदय जैसे कुछ अस्थिर हुआ जाता है (अश्रुत्याग) देखती हूं कि मङ्गल की कोई आशा नहीं। विधाता के विमुख और दैव के प्रतिकूल हुये बिन किस की ऐसी दशा होती है? हा! जिस ऐरावत हाथी ने अनेक बार घोर महायुद्ध में स्वर्गबासी महाराज को अटल भाव से अपने पीठ पर धारण किया, सहस्रों बाण के लगने से अंगक्षत होने पर भी जो एक पद रण में पीछे न हटा, वही ऐरावत एक साधारण बाण के लगने से रण से भड़क कर भागता हुआ एक बेरही नदी में जा डूबा! फिर जिस सेना का देश की स्वाधीनतारक्षाही ब्रत था, निज जीवन से भी

जिसे स्वाधीनता अधिक प्रिय थी, महा महा विपद् में भी जो सेना स्थिर और आशङ्कित रही आज वही सेना रण से भाग गई। स्वर्गवासी महाराज को इतना भी समय न मिला कि रक्तभरे वस्त्रों से अश्वारोहन कर घर तो चले आते—शाल्मलिवृक्ष एक क्षुद्र प्राणी के नखाघात से छिन्न हो गया?—हाय! महाराज निहत हुये! विधाता के बिना बाम हुये क्या यह कभी सम्भव था? हाय! स्मरण करने से हृदय फटा जाता है—स्वयं महाराज ने जिस बालक की रण-कुशलता देख जयसिंह नाम रक्खा वही कुमार जय-सिंह रण में पीठ देकर कायरों की नाईं भाग गया! यह सब अदृष्ट का फल—दैव का कोप है।

(अश्रुत्याग)

मंत्री—(स्वगत) नारी का हृदय स्वभावतः कोमल होता है—स्नेह, ममता, प्रणय, दया इत्यादि उसका नित्य-धर्म्म है। स्वभाव को कौन अतिक्रम कर सकता है? (प्रकाश) फिर अधीर हो गईं? यह क्या शोक का समय है? इस समय शत्रु के साम्हने जो कर्त्तव्य हो किया जाय, अश्रुपात के लिये बहुत समय है।

रानी—नहीं मंत्रिवर, अब विलाप का क्या काम है? कर्त्तव्य के ज्ञान से मैंने हृदय का द्वार बन्द किया,

अश्रुवेग को अवरोध किया—इस समय क्या कर्त्तव्य है कहो। [शय्या पर उठ बैठना।

मंत्री—मेरे विचार में तो युद्ध आता है।

रानी—"मेरे विचार में" ऐसा क्यों? यहां युद्ध का बिरोधी कौन है? कौन ऐसा कापुरुष है जो अब भी युद्ध की आवश्यकता स्वीकार न करे? मंत्रिवर, यदि ऐसा कापुरुष कोई हो तो उससे कह दो—कि सिन्धु देश में उसके लिये स्थान नहीं है वह शीघ्रही यह राज्य परित्याग करे।

मंत्री०—नहीं, युद्ध का बिरोधी कोई नहीं है।

रानी०—तो फिर "मेरे विचार में" कहने की क्या आवश्यकता थी! यह आशङ्का क्या हमारी ओर थी? मैं क्या युद्ध के लिये प्रस्तुत नहीं हूं? यदि इस सिन्धु राज्य में एक व्यक्ति भी मेरी सहायता न करे तथापि मैं अकेली ही यवनों के बिरुद्ध क्षेत्र में प्रवेश करूंगी, यह बात किसी प्रकार अन्यथा न होगी।

मंत्री०—इस राज्य में ऐसा कौन शत्रु है जो आपकी बीरता में सन्देह करे।

रानी०—तो फिर तुम्हारे वाक्य का क्या तात्पर्य्य है?

मंत्री०—कारण यह है कि यवन सेनापति ने सन्धि करने के अभिप्राय से दूत भेजा है?

रानी -(विस्मित होकर) यह कैसी उलटी बात ! रण में बिजयी होकर सन्धि का प्रस्ताव? इस्का क्या तात्पर्य्य है ?—चतुरताही इन लघुचित्त यवनों का भूषण है यह प्रस्ताव भी कोई चतुरता से भिन्न नहीं !

मंत्री॰—चतुरता नहीं भी हो सकती। यवन लोग कुछ दिग्विजय की आशा से इस देश में नहीं आये—राज्य स्थापन करना उनका अभिप्राय नहीं है, ये सब लुटेरु हैं—भारत का ऐश्वर्य्य अपहरण करना ही इनका मुख्य अभिलाष है।

रानी॰—तथापि, बिजयी होकर सन्धि का प्रस्ताव क्यों ? जो बिजयी होता है वह तो शत्रु के सर्वस्व का स्वामी हो जाता है—ऐश्वर्य्य-समुदाय सब उसी का है—वह क्यों सन्धि के लिये प्रस्ताव करेगा ?

मंत्री॰—यद्यपि यवनसेनापति ने रण में जय लाभ किया तथापि वे क्षत्रियों का पराक्रम देख चुके। जान पड़ता है कि वे पूर्ण रीति से समझ गये कि बिना दैव के अनुग्रह यहां जयलाभ की आशा नहीं है, वे यह भी समझ सकते हैं कि अब लों उनका पथ निष्कण्टक नहीं हुआ।

रानी॰—तोमैं सन्धि करके कभी उसका मार्ग निष्कण्टक करनेवाली नहीं।—यवनों के जयमार्ग में चिरकाल

लों यह कण्टक रहेगा। इस कण्टक के हटाने में काशिम का शरीर भी जायगा तौभी यह मार्ग शुद्ध होनेवाला नहीं। म्लेच्छ—यवन के साथ सन्धि?—लुटेरू चोरों के साथ सन्धि?—नारीजाति की मर्य्यादा नाशकरनेवाले असुरों के साथ सन्धि?—इस प्राण के रहते यह बात कभी न होगी। यवनों ने क्षत्री बीरपुरुषों का पराक्रम देखा है अब क्षत्री बीरनारियों का भीपराक्रम देखें। मन्त्रि, तुम अग्रसर हो—प्रथम तो राज्य के समस्त बीरपुरुषों के पास निमंत्रण भेज दो। मैं शीघ्र आमंत्रण-गृह में जाकर यवन दूत से बात करती हूं।

मंत्री०—जो आज्ञा, मैं भी आज्ञानुसार काम कर के आता हूं। [प्रस्थान।

—***—

द्वितीय गर्भाङ्क।

स्थान—आमंत्रण-गृह।

रानी और सुरङ्गिनी बैठी हैं दो परिचारिका खड़ी हैं।

(यवन-एलची को लेकर मंत्री का प्रवेश)

एल०—(आमंत्रण-गृह में पैर रखते ही) फ़तह हो खलीफ़ा की, फ़तह हो शहन्शाह बसरा की, यह

तावेदार उन्हीं का गुलाम है और सिपहसालार हुजूर महम्मद कासिम दामइकबालहू का हुक्म ले कर हाज़िर हुआ है।

रानी०—(स्वगत) आज क्षत्रियवीरों के गृह में यवनों का जयनाद अत्यन्त असह्य है, इच्छा होती है कि इसी क्षण इसे यमराज के घर भेज दूं—किन्तु यह दूत है अतएव अवध्य है, विशेषतः इसका क्या अपराध है? अपने प्रभू का जयकार बुलाना दास का कामही ठहरा (प्रकाश) दूत, यवन-सेनापति ने तुम्हें जो आज्ञा दी हो निस्सन्देह कहो।

एल०—हमारी सिपहसालार साहब की यह ख्वाहिश हर्गिज़ नहीं है कि शिकस्तों पर जुल्म किया जाय। जब कि दाहिर राजा मारे गये और आप के फ़र्ज़न्द भाग गये तो आप को लाज़िम है कि आप शहन्शाह की इतायत कुबूल करें।

रानी०—हम को जो कर्तव्य है वह हम स्वयं विचार लेगें यवन सेनापति को उसके लिये चिन्ता करने को कुछ आवश्यकता नहीं है। क्षत्रियनारी कुछ युद्ध में अशक्त नहीं है।

एल०—लेकिन हमारे सिपहसालार आप से जंग नहीं किया चाहते, औरतों के साथ जंग करने में क्या

नामवरी है? जिस काम में फतहयाबी हासिल होने पर भी बदनामी है उसमें कौन अक्लमंद शख्स हाथ डालेगा?

सुर०—यदि स्त्रियों के साथ युद्ध करने में इतना अपमान जान पड़ता है तो वे क्यों नहीं अपनी स्त्रियों को लड़ने के लिये बुला भेजते, वे लोग आकर इनका उद्धार करें।

एल०—हमारी औरतें बे-आबरू नहीं हैं वे पर्देनशीन हैं, मर्दों की मानिन्द जंग नहीं करतीं।

सुर०—तो जाकर अपने सेनापति ही से कह दो कि वे स्त्रिवेष धारण कर युद्ध में प्रवृत्त हों, नहीं तो अपयश निवारण का और कोई उपाय नहीं है, क्षत्रिय-कन्या का प्रण कदापि नहीं बदल सकता।

रानी०—दूत! यह बहुत वाचाल है, इसे पात्रापात्र का विचार नहीं है, इसका प्रधान काम केवल परिहास करनाही है। इसके कहने से आप विरक्त न हों।

एल०—(कुछ क्रुद्ध होकर) मुसलमान लोग बेवकूफ औरतों के दिलग्गी पर लिहाज नहीं करते। मैं फ़कत आपही के जवाब की इन्तिजारी देखता हूं।

सुर०—(स्वगत) स्त्रियों के प्रति यवनों की कैसी विजातीय घृणा है?—इनके संग बोलना भी अनुचित है।

मंत्री०—दूत के संग शिष्टता का व्यवहार उचित है—यह क्षत्रियों का गृह है कुछ यवनों का महल नहीं।

रानी०—मंत्रि, ठीक है अब बिवाद का कुछ प्रयोजन नहीं (दूत से) दूत, यदि यवन सेनापति स्त्री से युद्ध नहीं किया चाहते तो उन्हें उचित है कि इस देश को परित्याग कर दें।

एल०—हां वे इस पर राज़ी हैं मगर पेश्तर आप को दो शर्तें मंज़ूर करनी होंगी।

रानी०— क्या शर्तें ?

एल० —औव्वल तो आप को जंग का ख़र्च और हरसाल ख़िराज देना होगा। शहनशाह बसरा की मातहती मंज़ूर करने के बजुज़ वे हर्गिज़ रज़ामन्द नहीं हो सकते।

रानी०—क्षत्रियनारी दूसरों के अनुग्रह से राज्य और स्वाधीनता का भोग नहीं चाहती - वह मूल्य देकर वा शत्रु के हाथ में हो कर देश का उद्धार नहीं करती वह तीक्ष्ण अस्त्र की सहायता से जन्मभूमि की रक्षा करती है। जब शस्त्र से परास्त हुई तो साथ ही उसका जीवन भी शेष हुआ।

एल० - गोकि यह शर्त आपने नामंजूर की ताहम् अगर दूसरे शर्त की पाबन्दी आप इख़्तियार करेंगी तो भी

हमारे सिपहसालार साहब की मिहर्बानी आप पर रह सकती है। मुसलमानों का हमला इस मुल्क पर फ़कत दौलत हासिल करने की ख़्वाहिश से नहीं है बल्कि दीने-सादिक की तरक्की उनकी ख़ास ग़र्ज़ है। हमारे सिपहसालार साहब की ख़्वाहिश है कि आप हम लोगों के पाक मज़हब को क़बूल करें—काफ़िरों पर रहम करना मुसलमानों के मज़हब से बईद है।

रानी—परन्तु आर्य्यसन्तान न तो शस्त्र के बल से धर्म्म का प्रचार करते और न शस्त्र के भय से कभी धर्म्म परित्याग करते हैं। वे प्राण दे कर धर्म्म की रक्षा करते हैं।

एल०—पस, चूंकि आप कोई भी शर्त मंजूर नहीं करतीं तो मुझे लाचार हो कर हुज़ूरआली का आख़िरी हुक्म सुनाना पड़ा।

रानी—कहिये—निस्सन्देह कहिये—क्षत्रियनारी इन तुच्छ बातों से कदापि भय नहीं खाती।

एल०—हुज़ूर सिपहसलार साहब का यह हुक्म है कि अगर आप किसी शर्त पर राज़ी न हों तो हम फ़ौरन् इस आलोर शहर में वारिद होंगे—इस महल को नेस्त व नाबूद कर डालेंगे—शैतानी हिन्दू मज़हब